

डी.के. गणेश बाबू

बनाम

पी.टी. मनोकरन और अन्य

फरवरी 23, 2007

[डॉ. अरिजीत पसायत और आर.वी. रवींद्रन, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 438-अग्रिम जमानत-व्याप्ति और प्रकृति-जमानत देने वाले आदेश में रिहाई के लिए शर्तों का निर्धारण- औचित्य-अभिनिर्धारित: धारा 438 के अधीन शक्ति असाधारण प्रकृति की है- इसका प्रयोग केवल उन अपवादिक मामलों में किया जाना चाहिए जहाँ झूठे फंसाने की आशंका हो या जहाँ यह प्रतीत हो कि आरोपी अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा-धारा 438 के अधीन जारी निर्देशों के प्रवर्तन के लिए पूर्व शर्त आरोपी की गिरफ्तारी है-ऐसे आवेदन पर विचार करते हुए, गिरफ्तारी पर रोक लगाना, अनुसंधान में हस्तक्षेप करने के समान होगा, जो अनुमत नहीं है-वाद के तथ्यों में, उच्च न्यायालय द्वारा शर्तों के निर्धारण को अस्वीकृत किया गया-आरोपी को धारा 439 के संदर्भ में जमानत आवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश क्योंकि उसने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया है।

जमानत-साधारण जमानत और अग्रिम जमानत-के बीच अंतर।

शब्द और वाक्यांश-'जमानत'-का अर्थ।

उत्तरदाता सं. 1 से 3 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत के लिए एक आवेदन दायर किया, क्योंकि उन्हें अनुसंधान के अधीन एक आपराधिक वाद में गिरफ्तारी की आशंका थी। आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा आदेश में रिहाई की शर्तों को निर्धारित करते हुए निपटाया गया था।

इस न्यायालय में अपील में, शिकायतकर्ताओं ने यह तर्क दिया कि चूंकि रिहाई के लिए शर्तें आदेश में ही निर्धारित की गई थीं, वास्तव में उत्तरदाताओं को आत्मसमर्पण के बिना जमानत दे दी गई थी।

अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने।

अभिनिर्धारित: 1. जमानत का कोई भी आदेश आरोपी की गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी हो सकता है। जमानत मूल रूप से अवरोध से रिहाई है, विशेष रूप से पुलिस की हिरासत से। जमानत के एक साधारण आदेश और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन एक आदेश के बीच अंतर यह है कि जहां पहला गिरफ्तारी के बाद दिया जाता है, और इसलिए इसका अर्थ पुलिस की हिरासत से रिहाई है, वहीं दूसरा गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दिया जाता है और इसलिए गिरफ्तारी के ठीक उसी क्षण प्रभावी होता है। [कंडिका 6] [5-एफ-जी]

गुर बख्श सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1980] 2 एससीसी 565, का संदर्भ दिया गया।

2. संहिता की धारा 46(1) दंड प्रक्रिया संहिता, जो यह निर्धारित करती है कि गिरफ्तारियां कैसे की जानी हैं, प्रावधान करती है कि गिरफ्तारी करते समय पुलिस अधिकारी या ऐसा करने वाला अन्य व्यक्ति "गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में छुएगा या परिरुद्ध करेगा, जब तक कि शब्द या कार्य द्वारा हिरासत में समर्पण न हो"। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आदेश का उद्देश्य संहिता की धारा 46(1) द्वारा परिकल्पित स्पर्श या किसी परिरोध से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है। [कंडिका 6] [5-एच; 6 ए]

बालचंद जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर (1977) एससी 366, का संदर्भ दिया गया।

3. जमानत गिरफ्तारी की सामान्य अभिव्यक्ति है, न्यायालय पहली बात जो सोचता है

आदेश देने के लिए वह यह है कि गिरफ्तारी की स्थिति में किसी व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाएगा। स्पष्ट रूप से जमानत पर रिहाई का कोई प्रश्न नहीं है जब तक कि आरोपी को गिरफ्तार नहीं किया जाता है, और इसलिए, गिरफ्तारी होने पर ही आदेश क्रियाशील हो जाता है। धारा 438 के अधीन प्रयोग की जाने वाली शक्ति कुछ हद तक असाधारण प्रकृति की है और केवल अपवादिक मामलों में जहाँ यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति को झूठा फंसाया जा सकता है या जहाँ यह मानने के उचित आधार हैं कि किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति द्वारा अन्यथा अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है तो धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जाना है। शक्ति एक महत्वपूर्ण प्रकृति की होने के कारण इसे केवल न्यायिक मंचों के उच्चतर स्तरों, अर्थात् सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को सौंपा गया है। यह गैर-जमानती अपराध के प्रत्याशित आरोप के एफ वाद में प्रयोग करने योग्य शक्ति है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य यह है कि जैसे ही किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है, यदि उसने पहले ही सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय से आदेश प्राप्त कर लिया है, तो उसे जेल भेजे बिना तुरंत जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। [कंडिका 6] [6-बी-ई]

सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर (1996) एससी 1042,
का संदर्भ दिया गया।

4. धारा 439 की स्पष्ट भाषा के दृष्टिगत और इस न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जब तक कोई व्यक्ति हिरासत में नहीं है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन पोषणीय नहीं होगा।

[कंडिका 12] [8-एफ]

के.एल. वर्मा बनाम राज्य और एक अन्य, (1996) 7 स्केल 20, उलट दिया गया।

निरंजन सिंह और एक अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य, एआईआर (1980) एससी 785, अवलम्बन किया ।

निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य, (2004) 7 एससीसी 558; सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य और एक अन्य, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 6.12.2004 को निपटाए गए एसएलपी (आपराधिक) सं. 4601 वर्ष 2003 से उद्भूत आपराधिक अपील, का संदर्भ दिया गया।

5. वह निर्देश जो एक न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जारी कर सकता है, वह यह है कि किसी गैर-जमानती अपराध के करने के आरोप पर एक आरोपी की गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा जो ऐसी शर्तों के अधीन होगा जिन्हें न्यायालय लगाना उचित समझे। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन केवल उस व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है जिसे अभी तक गिरफ्तार नहीं किया गया है। एक बार जब उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो उसका उपाय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 या धारा 439 के अधीन संबंधित न्यायालय में जाना है। उस निर्देश की प्रकृति से ही जो न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जारी कर सकता है, यह स्पष्ट है कि निर्देश केवल गिरफ्तारी-पूर्व चरण में जारी किया जाना है। निर्देश गिरफ्तारी के बाद ही क्रियाशील होता है। जारी किए गए निर्देश के प्रवर्तन के लिए पूर्व शर्त आरोपी की गिरफ्तारी है। ऐसा होने पर, अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन पर विचार करते हुए न्यायालय गिरफ्तारी को रोक नहीं सकता है। [कंडिका 13] [8-जी-एच; 9-ए-बी]

6. प्रस्तावित गिरफ्तारी की वैधता पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन में विचार नहीं किया जा सकता है। अनुसंधान अधिकारी की भूमिका अच्छी तरह से परिभाषित है और अनुसंधान की प्रक्रिया में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का क्षेत्राधिकार संबंधी दायरा सीमित है। न्यायालय साधारणतः किसी अपराध के अनुसंधान में या एक संज्ञेय

अपराध में आरोपी की गिरफ्तारी में हस्तक्षेप नहीं करेगा। गिरफ्तारी को रोकने वाला एक अंतरिम आदेश, यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन पर विचार करते हुए पारित किया जाता है, तो यह अनुसंधान में हस्तक्षेप के समान होगा, जो किसी भी दर पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन नहीं किया जा सकता है। [कंडिका 14]

[9-डी-ई]

अद्वी धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [2005] 4 एससीसी 303, अवलम्बन किया।

7. उच्च न्यायालय द्वारा शर्तों के निर्धारण को अस्वीकृत किया जाता है। अतः, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों को संशोधित किया जाता है। चूंकि उत्तरदाताओं ने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया है और उच्च न्यायालय के निर्देशों के संदर्भ में उन्हें जमानत दे दी गई है, वे संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के संदर्भ में जमानत के लिए आवेदन करेंगे। ऐसा होने पर वाद पर उसके उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा जो इस तथ्य से अप्रभावित रहेगा कि इस न्यायालय ने शर्तों के निर्धारण को अस्वीकृत कर दिया है। [कंडिका 16] [9-जी-एच; 10-ए]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2007 की आपराधिक अपील सं. 249।

मद्रास उच्च न्यायालय के आपराधिक ओ.पी. सं. 17233/2006 में दिनांक 11.7.2006 के अंतिम आदेश/निर्णय से।

अपीलकर्ता के लिए राजीव दत्त, जी. शिव बालमुरुगन, वाई. अरवनगिरी, जोएल सरवनन, एल.के. सेंथिल और एल.के. पांडे।

उत्तरदाताओं के लिए एल.एन. राव, सी.के. ससी और वी.जी. प्रगासम।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा सुनाया गया

डॉ. अरिजीत पसायत, न्यायमूर्ति। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इस अपील में चुनौती मद्रास उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को है, जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 438 के संदर्भ में दायर एक आवेदन पर विचार करते हुए दिया गया था। यह अपील शिकायतकर्ता द्वारा दायर की गई है। उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदक जो यहाँ उत्तरदाता 1 से 3 हैं, ने आवेदन दायर किया क्योंकि उन्हें 2006 के अपराध सं. 1358 में गिरफ्तारी की आशंका थी जो संबंधित अंचल के निरीक्षक के अनुसंधान के अधीन था। परिवाद में यह आरोप लगाया गया था कि दहेज की माँगों के कारण, पीड़िता ने आत्महत्या कर ली और आरोपी-उत्तरदाता सं. 1 से 3 को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 304 बी और दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 4 के अधीन कथित अपराध के लिए गिरफ्तारी की आशंका थी।

3. आवेदन को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणियों और निर्देशों के साथ निपटाया गया था:

- i. उनमें से प्रत्येक को XVII महानगर दंडाधिकारी सैदापेट, चेन्नई की संतुष्टि के लिए समान राशि के लिए दो जमानतदारों के साथ 25,000/- रुपये (केवल पच्चीस हजार रुपये) की राशि के लिए एक बंधपत्र निष्पादित करना चाहिए।
- ii. प्रथम याचिकाकर्ता दो सप्ताह की अवधि के लिए प्रतिदिन प्रातः 10.30 बजे उत्तरदाता पुलिस के समक्ष उपस्थित होगा और उसके पश्चात् प्रथम याचिकाकर्ता आवश्यकता पड़ने पर उत्तरदाता पुलिस के समक्ष उपस्थित होगा।
- iii. याचिकाकर्ता 2 और 3 तीन दिनों की अवधि के लिए प्रतिदिन प्रातः 10.30 बजे से दोपहर 12.30 बजे तक उत्तरदाता पुलिस के समक्ष रिपोर्ट करेंगे और उसके पश्चात् वे आवश्यकता पड़ने पर पूछताछ के लिए उपलब्ध रहेंगे।
- iv. याचिकाकर्ता 1 और 2, प्रथम आरोपी के परामर्श से, जो इस वाद में पीड़िता का पति है, इस आदेश के हमारे निष्पादन के दो सप्ताह की अवधि के भीतर

पीड़िता से संबंधित सभी वस्तुओं अर्थात् सोने और हीरे के आभूषण, चांदी की वस्तुओं सहित घरेलू वस्तुओं और नकद राशि को पीड़िता के पिता को सौंपने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाएंगे।

याचिकाकर्ता इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो सप्ताह के भीतर बंधपत्र निष्पादित करने और जमानतदार प्रस्तुत करने के लिए उपरोक्त संदर्भित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे, ऐसा न करने पर, यह आदेश रद्द माना जाएगा।"

4. सूचक - अपीलकर्ता द्वारा अपील के समर्थन में आग्रह किया गया एकमात्र बिंदु यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 438 के अधीन एक आवेदन पर विचार करते समय जिन मापदंडों को ध्यान में रखा जाना चाहिए था, उन्हें ध्यान में नहीं रखा गया था। यह प्रस्तुत किया गया था कि वास्तव में उत्तरदाताओं को आत्मसमर्पण के बिना जमानत दे दी गई है, क्योंकि रिहाई के लिए शर्तें आदेश में ही निर्धारित की गई हैं।

5. दूसरी ओर उत्तरदाता सं. 1 से 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभिलेख पर मौजूद सामग्री स्पष्ट रूप से दिए गए आदेश को पारित करने को न्यायोचित ठहराती है, और आदेश में ऐसा कुछ भी अवैध नहीं है जो किसी हस्तक्षेप की वारंटी देता हो। इसके अतिरिक्त उत्तरदाताओं ने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्धारित शर्तों पर उन्हें जमानत दे दी गई है।

6. संहिता की धारा 438 जो सुविधा देती है उसे सामान्यतः 'अग्रिम जमानत' के रूप में संदर्भित किया जाता है। यह अभिव्यक्ति जिसका उपयोग विधि आयोग द्वारा अपनी 41 वीं रिपोर्ट में किया गया था, न तो धारा में और न ही इसके सीमांत नोट में उपयोग की गई है। लेकिन 'अग्रिम जमानत' अभिव्यक्ति इस बात का संकेत देने का एक सुविधाजनक तरीका है कि गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत के लिए आवेदन करना संभव है। जमानत का कोई भी आदेश आरोपी की गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी हो सकता है। व्हार्टन की लॉ लेक्सिकॉन

'जमानत' की व्याख्या 'गिरफ्तार या कारावासित व्यक्ति को उसकी उपस्थिति के लिए प्रतिभूति लिए जाने पर स्वतंत्रता देना' के रूप में करती है। इस प्रकार जमानत मूल रूप से अवरोध से रिहाई है, विशेष रूप से पुलिस की हिरासत से। जमानत के एक साधारण आदेश और संहिता की धारा 438 के अधीन एक आदेश के बीच अंतर यह है कि जहां पहला गिरफ्तारी के बाद दिया जाता है, और इसलिए इसका अर्थ पुलिस की हिरासत से रिहाई है, वहीं दूसरा गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दिया जाता है और इसलिए गिरफ्तारी के ठीक उसी क्षण प्रभावी होता है। (देखें: *गुर बख्श सिंह बनाम पंजाब राज्य*, [1980] 2 एससीसी 565)। संहिता की धारा 46(1), जो यह निर्धारित करती है कि गिरफ्तारियां कैसे की जानी हैं, प्रावधान करती है कि गिरफ्तारी करते समय पुलिस अधिकारी या ऐसा करने वाला अन्य व्यक्ति "गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में छुएगा या परिरुद्ध करेगा, जब तक कि शब्द या कार्य द्वारा हिरासत में समर्पण न हो"। संहिता की धारा 438 के अधीन आदेश का उद्देश्य संहिता की धारा 46(1) द्वारा परिकल्पित स्पर्श या किसी परिरोध से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है। सर्वोच्च न्यायालय ने *बालचंद जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य*, एआईआर (1977) एससी 366 में 'अग्रिम जमानत' अभिव्यक्ति को एक मिथ्या नाम बताया है। यह सर्वविदित है कि जमानत गिरफ्तारी की सामान्य अभिव्यक्ति है, न्यायालय पहली बात जो सोचता है आदेश देने के लिए वह यह है कि गिरफ्तारी की स्थिति में किसी व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाएगा। स्पष्ट रूप से जमानत पर रिहाई का कोई प्रश्न नहीं है जब तक कि आरोपी को गिरफ्तार नहीं किया जाता है, और इसलिए, गिरफ्तारी होने पर ही आदेश क्रियाशील हो जाता है। धारा 438 के अधीन प्रयोग की जाने वाली शक्ति कुछ हद तक असाधारण प्रकृति की है और केवल अपवादिक मामलों में जहाँ यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति को झूठा फंसाया जा सकता है या जहाँ यह मानने के उचित आधार हैं कि किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति द्वारा अन्यथा अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है तो धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जाना है। शक्ति एक महत्वपूर्ण प्रकृति की होने के

कारण इसे केवल न्यायिक मंचों के उच्चतर स्तरों, अर्थात् सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को सौंपा गया है। यह गैर-जमानती अपराध के प्रत्याशित आरोप के वाद में प्रयोग करने योग्य शक्ति है। संहिता की धारा 438 द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य यह है कि जैसे ही किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है, यदि उसने पहले ही सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय से आदेश प्राप्त कर लिया है, तो उसे जेल भेजे बिना तुरंत जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

7. धाराएं 438 और 439 विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं। संहिता की धारा 439 इस प्रकार पढ़ी जाती है:

"439. (1) एक उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय निर्देश दे सकता है -

(ए) कि किसी अपराध के आरोपी और हिरासत में मौजूद व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाए, और यदि अपराध धारा 437 की उप-धारा (3) में निर्दिष्ट प्रकृति का है, तो कोई भी शर्त लगा सकता है जिसे वह उस उप-धारा में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए आवश्यक समझता है;

(बी) कि जमानत पर किसी व्यक्ति को रिहा करते समय दंडाधिकारी द्वारा लगाई गई किसी भी शर्त को अपास्त किया जाए या संशोधित किया जाए।"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

8. प्रावधानों को मात्र पढ़ने से यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 439 के संदर्भ में आवेदन करने के लिए एक व्यक्ति को हिरासत में होना चाहिए। संहिता की धारा 438 "गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के लिए निर्देश" से संबंधित है।

9. *सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य*, एआईआर (1996) एससी 1042 में निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:

"अग्रिम जमानत गैर-जमानती मामलों में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दी जाती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि नियमित न्यायालय, जिसे अपराधी का विचारण करना है, को दरकिनार करने की मांग की जाती है और यही कारण है कि उच्च न्यायालय ने जमानत जारी रहने के लिए बाहरी तिथि बिल्कुल सही ढंग से तय की और इसकी समाप्ति की तिथि पर याचिकाकर्ता को नियमित न्यायालय में जमानत के लिए आवेदन करने का निर्देश दिया। पालन करने के लिए यह सही प्रक्रिया है क्योंकि यह महसूस किया जाना चाहिए कि जब सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय अग्रिम जमानत दे रहा है, तो यह उस चरण में दी जाती है जब अनुसंधान अधूरा होता है और, इसलिए, इसे कथित अपराधी के खिलाफ साक्ष्य की प्रकृति के बारे में सूचित नहीं किया जाता है। इसलिए, यह आवश्यक है कि ऐसे अग्रिम जमानत आदेश केवल एक सीमित अवधि के होने चाहिए और साधारणतः उस अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर अग्रिम जमानत देने वाले न्यायालय को नियमित न्यायालय पर छोड़ देना चाहिए ताकि वह अनुसंधान की प्रगति या आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद उसके समक्ष रखे गए साक्ष्य के मूल्यांकन पर मामले से निपट सके।"

(जोर दिया गया)

10. *के.एल. वर्मा बनाम राज्य और एक अन्य*, (1996) 7 स्केल 20 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"इस न्यायालय ने आगे टिप्पणी की कि गैर-जमानती मामलों में अग्रिम जमानत गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दी जाती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि नियमित न्यायालय, जिसे अपराधी का विचारण करना है, को दरकिनार करने की मांग की जाती है। इसलिए, यह इंगित किया गया था कि यह आवश्यक था कि ऐसे अग्रिम जमानत आदेश केवल एक सीमित अवधि के होने चाहिए और

साधारणतः उस अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर अग्रिम जमानत देने वाले न्यायालय को नियमित न्यायालय पर छोड़ देना चाहिए ताकि वह अनुसंधान की प्रगति या आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद उसके समक्ष रखे गए साक्ष्य के मूल्यांकन पर मामले से निपट सके। इससे, न्यायालय जो बताना चाहता था वह यह था कि अग्रिम जमानत का आदेश विचारण के अंत तक प्रभावी नहीं रहता है, बल्कि यह सीमित अवधि का होना चाहिए क्योंकि नियमित न्यायालय को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। सीमित अवधि का निर्धारण वाद के तथ्यों और आरोपी को जमानत के लिए नियमित न्यायालय में जाने के लिए पर्याप्त समय देने और नियमित न्यायालय को जमानत आवेदन का निर्धारण करने के लिए पर्याप्त समय देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जब तक जमानत आवेदन का किसी भी तरह से निपटारा नहीं हो जाता, न्यायालय आरोपी को अग्रिम जमानत पर रहने की अनुमति दे सकता है। इसे अलग तरह से कहें तो, अग्रिम जमानत उस अवधि के लिए दी जा सकती है जो उस तिथि तक विस्तारित हो सकती है जिस पर जमानत आवेदन का निपटारा किया जाता है या उसके कुछ दिनों बाद तक ताकि आरोपी व्यक्तियों को उच्चतर न्यायालय में जाने में सक्षम बनाया जा सके, यदि वे ऐसा चाहते हैं।”

(जोर दिया गया)

11. *निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य*, [2004] 7 एससीसी 558 और *सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य और एक अन्य*, दिनांक 6.12.2004 को निपटाए गए एसएलपी (आपराधिक) सं. 4601 वर्ष 2003 से उद्धृत आपराधिक अपील में, के.एल. वर्मा के वाद (उपरोक्त) में कुछ अस्पष्ट पहलुओं पर ध्यान दिया गया था। यह टिप्पणी "या उसके कुछ दिनों बाद तक ताकि आरोपी व्यक्तियों को उच्चतर न्यायालय में जाने में सक्षम

बनाया जा सके, यदि वे ऐसा चाहते हैं" से संबंधित था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 439 की आवश्यकता उपरोक्त टिप्पणियों से समाप्त नहीं होती है। धारा 439 केवल तभी क्रियाशील होती है जब कोई व्यक्ति "अभिरक्षा" में हो। के.एल. वर्मा के वाद (उपरोक्त) में सलाउद्दीन के वाद (उपरोक्त) का संदर्भ दिया गया था। उक्त वाद में ऐसा कोई संकेत नहीं था जैसा कि के.एल. वर्मा के वाद (उपरोक्त) में दिया गया था, कि यदि आरोपी उच्चतर न्यायालय में जाना चाहते हैं तो उन्हें कुछ दिन दिए जा सकते हैं। संहिता की धारा 439 की वैधानिक आवश्यकता को उक्त टिप्पणी द्वारा पूरी तरह से निष्क्रिय नहीं कहा जा सकता है।

12. धारा 439 की स्पष्ट भाषा के दृष्टिगत और *निरंजन सिंह और एक अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य*, एआईआर (1980) एससी 785 में इस न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जब तक कोई व्यक्ति अभिरक्षा में नहीं है, संहिता की धारा 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन पोषणीय नहीं होगा। संहिता की धारा 439 के अर्थ के भीतर किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में कब कहा जा सकता है, यह प्रश्न उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया था।

13. वह निर्देश जो एक न्यायालय संहिता की धारा 438 के अधीन जारी कर सकता है, वह यह है कि किसी गैर-जमानती अपराध के करने के आरोप पर एक आरोपी की गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा जो ऐसी शर्तों के अधीन होगा जिन्हें न्यायालय लगाना उचित समझे। संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन केवल उस व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है जिसे अभी तक गिरफ्तार नहीं किया गया है। एक बार जब उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो उसका उपाय संहिता की धारा 437 या धारा 439 के अधीन संबंधित न्यायालय में जाना है। उस निर्देश ए की प्रकृति से ही जो न्यायालय संहिता की धारा 438 के अधीन जारी कर सकता है, यह स्पष्ट है कि निर्देश केवल गिरफ्तारी-पूर्व चरण में जारी किया जाना है। निर्देश गिरफ्तारी के बाद ही क्रियाशील होता है।

जारी किए गए निर्देश के प्रवर्तन के लिए पूर्व शर्त आरोपी की गिरफ्तारी है। ऐसा होने पर, अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन पर विचार करते हुए न्यायालय गिरफ्तारी को रोक नहीं सकता है।

14. साधारणतः, गिरफ्तारी अनुसंधान की प्रक्रिया का एक भाग है जिसका उद्देश्य कई प्रयोजनों को सुरक्षित करना है। अपराध के उद्देश्य, तैयारी, किए जाने और उसके बाद के विभिन्न पहलुओं तथा अपराध में अन्य व्यक्तियों के संबंध, यदि कोई हों, के बारे में आरोपी से विस्तार से पूछताछ करनी पड़ सकती है। ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनमें आरोपी ऐसी जानकारी प्रदान कर सकता है जिससे भौतिक तथ्यों की खोज हो सकती है। अनुसंधान को बिना किसी बाधा के आगे बढ़ाने में सक्षम बनाने तथा अपराध के पीड़ित से जुड़े साक्षियों और व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए, उसकी अनुपस्थिति को रोकने तथा इलाके में कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए उसकी स्वतंत्रता को कम करना आवश्यक हो सकता है। इन या अन्य कारणों से, गिरफ्तारी अनुसंधान की प्रक्रिया का एक अपरिहार्य भाग बन सकती है। प्रस्तावित गिरफ्तारी की वैधता पर संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन में विचार नहीं किया जा सकता है। अनुसंधान अधिकारी की भूमिका अच्छी तरह से परिभाषित है और अनुसंधान की प्रक्रिया में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का क्षेत्राधिकार संबंधी दायरा सीमित है। न्यायालय साधारणतः किसी अपराध के अनुसंधान में या एक संज्ञेय अपराध में आरोपी की गिरफ्तारी में हस्तक्षेप नहीं करेगा। गिरफ्तारी को रोकने वाला एक अंतरिम आदेश, यदि संहिता की धारा 438 के अधीन एक आवेदन पर विचार करते हुए पारित किया जाता है, तो यह अनुसंधान में हस्तक्षेप के समान होगा, जो किसी भी दर पर, संहिता की धारा 438 के अधीन नहीं किया जा सकता है।

15. उपरोक्त पहलुओं को *अद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*, [2005] 4 एससीसी 303) में रेखांकित किया गया है।

16. ऊपर जो कहा गया है, उसके दृष्टिगत विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए कुछ निर्देश, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, *अद्वी धरन दास* के वाद (उपरोक्त) में कही गई बातों के अनुरूप नहीं हैं। तदनुसार हम निर्देशों को संशोधित करते हैं। चूँकि उत्तरदाताओं ने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया है और उच्च न्यायालय के निर्देशों के संदर्भ में उन्हें जमानत दे दी गई है, वे संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और आज से चार सप्ताह के भीतर संहिता की धारा 439 के संदर्भ में जमानत के लिए आवेदन करेंगे। ऐसा होने पर वाद पर उसके उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा जो इस तथ्य से अप्रभावित रहेगा कि हमने उच्च न्यायालय द्वारा शर्तों के निर्धारण को अस्वीकृत कर दिया है। संबंधित न्यायालय मामले से उचित रूप से निपटेगा। यह हमारे ध्यान में लाया गया है कि मृतका के पति को उसके आत्मसमर्पण के बाद पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया है। निर्धारित समय के भीतर दायर किए जाने वाले जमानत आवेदन पर विचार करते समय संबंधित न्यायालय द्वारा उस आदेश के प्रभाव और/या प्रासंगिकता पर विधिवत विचार किया जाएगा।

17. अपील को उपरोक्त सीमा तक स्वीकार किया जाता है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

के.के.टी.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।